डॉ. गोपाल राय
और
हिन्दी कथालोचना

संपादक
पूनम सिन्हा

डॉ० गोपाल राय और हिन्दी कथालोचना

संपादक
पूनम सिन्हा

सह-संपादक
डॉ० त्रिविक्रम नारायण सिंह

प्रतिभा प्रकाशन

ISBN : 978-81-941225-8-6

प्रथम संस्करण

2020

सर्वाधिकार ©

संपादकाधीन

प्रकाशक

प्रतिभा प्रकाशन

केदारनाथ रोड (बिजली ऑफिस के पास)

मुजफ्फरपुर-842001

फोन : 9955658474, 9572980709

अक्षर-संयोजन

अमित कुमार कर्ण

आवरण

शशिकांत सिंह

मुद्रक

जी० एस० ऑफसेट, दिल्ली

मूल्य

350.00 (तीन सौ पचास रुपये)

Dr. Gopal Rai Aur Hindi Kathalochana

Rs. 350.00

अनुक्रम

संपादकीय —7

धरोहर :

भाषा चिन्तन : शुद्ध भाषा की खोज **गोपाल राय** —13
स्मृति-शेष बंधुवर **निर्मला जैन** —22
बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी: डॉ० गोपाल राय **हरदयाल** —27
समावेशी दृष्टि से लिखा हिन्दी उपन्यास का इतिहास **मैनेजर पाण्डेय** —34
विद्धांग–बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि–खर रुधिर-स्राव **सत्यकाम** —41
उपन्यास की संरचना : संदर्भ-प्रेमचंद के उपन्यासों की यथार्थवादी संरचना **डॉ. पूनम सिन्हा** —54
हिन्दी कहानी का इतिहास-2 साहित्य भी इतिहास भी **डॉ. पूनम सिन्हा** —65
इतिहासकार गोपाल राय **अमिता पाण्डेय** —71

आलेख :

कथा-आलोचना की सैद्धांतिकी और डॉ० गोपाल राय **डॉ. रेवती रमण** —77
डॉ० गोपाल राय की कथालोचना **डॉ. चंद्रभानु प्रसाद सिंह**—81
नलिनविलोचन शर्मा एवं गोपाल राय की साहित्यदृष्टि : संदर्भ-गोदान **डॉ. सुधा बाला** —85
हिन्दी उपन्यासालोचन के हिमालय : डॉ० गोपाल राय **डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय** —93
गोपाल राय की सृजनात्मकता: कथालोचना की विस्तृत भूमि **डॉ. संजय पंकज** —98
हिन्दी कहानी का इतिहास लेखन और डॉ० गोपाल राय **डॉ. त्रिविक्रम ना.सिंह**—102
उपन्यास की संरचना और डॉ० गोपाल राय **डॉ. रामेश्वर द्विवेदी** —109

गोपाल राय : एक दृष्टि	**डॉ. राजीव कुमार झा**	–116
शेखर : एक जीवनी और गोपाल राय की विवेचना	**डॉ. धीरेन्द्र प्रसाद राय**	–121
मैला आँचल की आंचलिकता: डॉ० गोपाल राय	**डॉ. कल्याण कुमार झा**	–133
उपन्यास आलोचना की परंपरा और गोपाल राय	**डॉ. संत साह**	–137
मैला आँचल में लोकविश्वास के तत्त्वों की पहचान : डॉ० गोपाल राय	**डॉ. साक्षी शालिनी**	–140
साहित्येतिहास-लेखन की कठिनाइयाँ और डॉ० गोपाल राय	**डॉ. राकेश रंजन**	–144
डॉ० गोपाल राय की दृष्टि में मैला आँचल में स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की प्रकृति	**डॉ. सुशांत कुमार**	–153
डॉ० गोपाल राय की औपन्यासिक आलोचना का अनुशीलन	**डॉ. संध्या पाण्डेय**	–157
आंचलिक उपन्यास की अवधारणा और गोपाल राय	**डॉ. चित्तरंजन कुमार**	–163
उपन्यास शिल्प और गोपाल राय का विवेचन	**सोनल**	–170
गोदान की आलोचना प्रक्रिया और कथालोचक गोपाल राय	अखिलेश कुमार	–176
हिन्दी उपन्यासालोचन और डॉ० गोपाल राय	**डॉ. माधव कुमार**	–180
कथा आलोचक डॉ० गोपाल राय	**डॉ. पल्लवी**	–185
डॉ० गोपाल राय : समीक्षा और साहित्याब्दकोश	**समीक्षा सुरभि**	–188
कथालोचक डॉ० गोपाल राय की दृष्टि में विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ	**डॉ. प्रीति कुमारी**	–200
डॉ० गोपाल राय की दृष्टि में मैला आँचल की भाषागत विशिष्टता	**डॉ. इंदिरा कुमारी**	–205
हिन्दी उपन्यास का इतिहास और गोपाल राय	**पल्लवी कुमारी**	–211
उपन्यास की पहचान मैला आँचल के संबंध में गोपाल राय की विवेचना	**डॉ. अंशु कुमारी**	–216
हिन्दी कहानी का इतिहास और डॉ० गोपाल राय	**विकास कुमार**	–220

संस्मरण :

मैं और गोपाल राय	**उषाकिरण खान**	–225

इतिहासकार-कोशकार डॉ० गोपाल राय :

एक संक्षिप्त परिचय **भगवानदास मोरवाल** –227
सुखद स्मृतियों में गोपाल राय **डॉ. श्रीनारायण प्रसाद सिंह**–232

साक्षात्कार :

डॉ० गोपाल राय का साक्षात्कार
(समीक्षा से साभार) **डॉ. पूनम सिन्हा** –236
प्रो. सत्यकाम का साक्षात्कार : **डॉ. पूनम सिन्हा** –243
डॉ० खगेन्द्र ठाकुर का साक्षात्कार : संदर्भ
डॉ० गोपाल राय **डॉ. सुनीता गुप्ता** –258
डॉ० रामवचन राय का साक्षात्कार : संदर्भ
डॉ० गोपाल राय **डॉ. पूनम सिन्हा** –263
डॉ. माधव कुमार
अरुणकमल का साक्षात्कार : संदर्भ
डॉ० गोपाल राय **विनीता कुमारी** –268
प्रतिवेदन –271

साहित्येतिहास-लेखन की कठिनाइयाँ और डॉ. गोपाल राय

–डॉ० राकेश रंजन

हिंदी में समालोचना एवं साहित्येतिहास-लेखन की समृद्ध परंपरा रही है। यह परंपरा साहित्य के जीवनधर्मी विकास, उसके मानवीय चरित्र के निर्माण और उसके लोकतांत्रिक स्वरूप के प्रसार के पक्ष में रही है। पं. बालकृष्ण भट्ट के लिए 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकाश है।' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'काव्यों की रचना और उनका विषय ऐसा होना चाहिए जो देश और काल के अनुकूल हो।' आचार्य शुक्ल अपने लेखन से आलोचना-कर्म को शीर्ष पर स्थापित करते हुए भी न केवल लोक और लोकमंगल की भावना को अपने हृदय से सदैव लगाए रखते हैं, बल्कि गंभीर किस्म की सर्जनात्मकता के बावजूद अपनी आलोचना-भाषा को जन-विरोधी या अबूझ होने की कभी आजादी नहीं देते। आचार्य द्विवेदी के लिए 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है'। उनकी दृष्टि में 'साहित्य का प्रयोजन–लोककल्याण' है। डॉ. रामविलास शर्मा आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की आलोचना को वैज्ञानिक ढंग से विकसित करते हैं। वे अपने देशकाल की साहित्यभूमि के साथ-साथ उसकी निकट पृष्ठभूमि को अपनी आलोचना के केंद्र में रखते हुए उसकी जनपक्षीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। डॉ. नामवर सिंह आलोचना के एकेडमिक ढाँचे को तोड़कर उसे एक पठनीय विधा बनाते हैं। यह पठनीयता वे गहरे अध्यवसाय और आत्मसंघर्ष के बाद परस्पर वाद-विवाद के जरिए आलोचना में संवाद की ताकत के साथ हासिल करते हैं। यह संवादधर्मिता हिंदी आलोचना की अन्यतम उपलब्धि है। ध्यातव्य है कि 'पठनीयता' और 'संवादधर्मिता'-जैसे गुण जीवनधर्मी आलोचना के ही तत्त्व हैं।

हिंदी आलोचना की विकास-धारा बताती है कि उसका मूल चरित्र क्या है। उक्त सभी आलोचकों की पद्धतियाँ भले अलग-अलग रही हों,

उनके मुहावरे और बीज शब्द भिन्न-भिन्न रहे हों, उनकी आलोचना के क्षेत्र और व्याख्या के स्रोत एक दूसरे से मेल न खाते रहे हों, पर निश्चित तौर पर वे सभी एक ही प्रगतिशील भूमि पर खड़े थे, जो कभी 'लोकवाद' कहलाई, तो कभी 'मानववाद' और कभी 'जनवाद'। हिंदी आलोचना के स्वभाव में मौजूद इस प्रगतिशीलता को सींचकर जरखेज बनाने में कई और आलोचकों ने अपना काफी खून-पसीना एक किया है, जिनमें से एक प्रमुख नाम डॉ. गोपाल राय का है।

हिंदी कथालोचना और साहित्येतिहास के क्षेत्र में डॉ. गोपाल राय का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय है। यह देखना सुखद है कि वे आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की कई महत्त्वपूर्ण रचनाओं से ही नहीं, बल्कि कई अनिवार्य प्रश्नों से भी टकराते रहे हैं। उनके द्वारा लिखित 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' तथा 'हिंदी कहानी का इतिहास' जैसी पुस्तकें उनकी साफ, सजग और शोधपूर्ण आलोचना-दृष्टि की मिसालें हैं। साहित्येतिहास-लेखन एक कठिन तथा अनुसंधान-सापेक्ष कर्म है, जिसके लिए लेखक के पास पर्याप्त धैर्य तथा प्रण का होना अनिवार्य है। यह कर्म कमजोर जिगरे के लेखक के लिए कठिन है। यह बात डॉ. राय बखूबी जानते थे, इसलिए 'हिंदी कहानी का इतिहास' की 'सीधी बात' शीर्षक भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि "साहित्येतिहास लेखन एक मुश्किल काम माना जाता है। है भी। अनेक विद्वानों ने तो इसे नामुमकिन ही करार दे दिया है। उत्तर आधुनिक चिंतकों ने इसकी मौत की घोषणा भी कर डाली है।"[1] इस कठिनता-बोध के बावजूद वे मानते हैं कि किसी साहित्यिक विकासधारा को समझने के लिए, उसे तरंगित और गतिशील करनेवाली कृतियों को चिह्नित और मूल्यांकित करने के लिए साहित्येतिहास-लेखन का यह 'मुश्किल काम' जरूरी है, क्योंकि यह पाठकीय चेतना के संवर्धन के महत् उद्देश्य से जुड़ा है। लेकिन इसका बीड़ा कौन उठाए? "संगोष्ठियों में अक्सर ही यह चिंता व्यक्त की जाती रही है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद हिंदी साहित्य का कोई मुकम्मल इतिहास नहीं लिखा जा सका है। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के कतिपय सामूहिक प्रयास भी हुए हैं, पर उन्हें भी संतोषजनक होने का प्रमाणपत्र नहीं मिल पाया है। यह भी एक हास्यास्पद स्थिति है कि संगोष्ठियों में इसका रोना तो खूब रोया जाता है, पर इसका बीड़ा उठाने को कोई तैयार नहीं होता।"[2] जाहिर है, इसी चिंता के फलस्वरूप उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य के इतिहास-लेखन का कठिन कार्य

अपने हाथ में लिया, अपने चौथेपन में, अपनी वयजनित लाचारी के इस बोध के बावजूद कि 'रहा प्रथम बल मम तन नाहीं'। निस्संदेह यह बात साहित्य के प्रति उनके दायित्वबोध और सेवाभाव को उजागर करती है।

साहित्येतिहास-लेखन की कई कठिनाइयाँ हैं—न तो उसे सर्वेक्षणात्मक होना चाहिए, न ही 'सेकेंड हैंड इनफॉर्मेशन' पर आधारित। उसे लेखक के व्यापक और गहन अध्ययन से प्राप्त निजी अनुभव पर, उसके अपने 'तत्त्वाभिनिवेशी भावकत्व' पर आधारित होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो इस बात की पूरी आशंका रहेगी कि उसमें गलत और भ्रामक तथ्यों की भरमार हो जाए। साहित्येतिहास और आलोचना के अनेक ग्रंथों में ऐसा हुआ भी है। इस संदर्भ में डॉ. नंदकिशोर नवल का एक लेख ध्यातव्य है, जिसे उन्होंने 'कसौटी' में 'विवेकी सिंह' के नाम से लिखा था। शीर्षक है–'हिंदी के साहित्येतिहास-ग्रंथों में तथ्य-संबंधी भूलें'। यह लेख बाद में उनकी पुस्तक 'क्रमभंग' में संकलित हुआ। इसमें उन्होंने हिंदी के जिन चुनिंदा आलोचकों की तथ्य-संबंधी कुछ भूलों की चर्चा की है, उनमें से अधिकतर अपने ज्ञान, विवेक, संवेदना और सावधानता के लिए मानक माने जा चुके हैं। आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेंद्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. बच्चन सिंह–इन सबकी भयानक भूलों को देख-जान-समझकर पाठक सन्न रह जाएँगे और हिंदी के छात्रों तथा परीक्षार्थियों को पसीना आ जाएगा। ऐसी भूलों को डॉ. नवल ने लेखकों की सुस्ती, लापरवाही और हड़बड़ी का परिणाम बताया है, जो कि मानक ग्रंथों की रचना में अनपेक्षित होती हैं। उन्होंने लिखा है–"भूल होना मानवीय है, लेकिन उसकी सीमा तो होती ही है, उसका प्रकार भी होता है। हर प्रकार की भूल क्षम्य नहीं हो सकती। विदेशों से आनेवाली पुस्तकों में अपवाद-स्वरूप ही कभी कोई भूल मिलती है, लेकिन यह देखकर मन ग्लानि से भर जाता है कि हिंदी की महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में असंख्य भूलें मौजूद होती हैं और तथ्य-संबंधी, जिनके बचाव में कोई तर्क नहीं दिया जा सकता। हिंदी के लेखकों के पास साधनों का अभाव होता है, यह सही है, लेकिन वे उसकी क्षतिपूर्ति अपने श्रम और लगन से कर सकते हैं, जो कम ही देखने को मिलता है। आम तौर पर तो लेखकों का आलस्य और लापरवाही ही सामने आती है। इसी कारण वे ठीक से संदर्भ भी नहीं देते हैं, उद्धरण अशुद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं और विरामचिह्नों को तो कुछ समझते ही नहीं।"[3] दिलचस्प है कि डॉ. नवल जिन भूलों की चर्चा कर रहे हैं, वे उनसे

संबंधित पुस्तकों को छानकर नहीं प्राप्त की गई हैं। "ये पुस्तकें चलते-चलाते, मिल गई हैं, जिसका मतलब यह है कि गंभीरता से छान-बीन करने पर उनमें से कुछ में इतनी भूलें मिल सकती हैं कि आपका सर भिन्ना जाए।"[3]

साहित्येतिहास-लेखन की एक कठिनाई यह भी है कि इस संकुचित दृष्टि पर आधारित नहीं होना चाहिए। किसी भी विधा में अनेक प्रकार के रचनाकार होते हैं और हर रचनाकार का अपना अलग ढंग होता है। सिर्फ इतना ही नहीं, सच्चाई तो यह है कि हर रचना का भी अपना अलग ढंग होता है, इसलिए जैसे सभी रचनाकारों के लिए एक ही कसौटी नहीं हो सकती, वैसे ही किसी रचनाकार की सभी रचनाओं को भी उसके लिए प्रयुक्त किसी खास कसौटी पर कसकर नहीं देखा जा सकता। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के साक्ष्य से हम जानते हैं कि लोकमंगल-जैसे व्यापक प्रतिमान से भी हिंदी साहित्य के साथ पूरा न्याय नहीं हो सका। आशय यह कि किसी बनी-बनाई धारणा के आधार पर साहित्येतिहास नहीं लिखा जा सकता। इसके लिए लेखक के पास साहित्य का व्यापक अनुभव और उसकी दृष्टि का मुक्त होना जरूरी है। यदि उसकी दृष्टि किसी खास सैद्धांतिकी या विचारधारा से बद्ध होगी, तो निश्चित ही वह साहित्य के वैविध्यपूर्ण लोक में सर्वत्र विचरण नहीं कर पाएगा, लकीर का फकीर बना एक सीध में चलता चला जाएगा, परिणामतः सभी प्रकार की साहित्यिक कृतियों के महत्त्व और सौंदर्य को समझने में चूक जाएगा। वस्तुतः साहित्य में भिन्न-भिन्न धाराओं और प्रवृत्तियों के रचनाकार होते हैं, जिनकी संवेदना और अभिव्यक्ति में बहुत ज्यादा फर्क होता है। यदि किसी खास विचारधारा में बँधकर उन सभी पर विचार किया गया, तो इसका मतलब होगा एकांगी दृष्टि लेकर चलना, जिससे साहित्य में वैविध्य का सौंदर्य नष्ट हो जाएगा या अनदेखा रह जाएगा। यद्यपि इसका मतलब यह कतई नहीं है कि साहित्येतिहास-लेखक के पास कोई दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए। वह बिलकुल होना चाहिए, लेकिन 'साहित्येतर' न होकर उसे 'साहित्यिक' होना चाहिए। प्रायः यह देखने में आता है कि किसी कृति के बारे में साहित्येतिहासकार या आलोचक कुछ कहते हैं और कृति का अपना संदेश कुछ और होता है। इस प्रसंग में यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि साहित्य के इतिहास में इतिहास और साहित्य का क्या संबंध होना चाहिए? इसके उत्तर में रेने वेलेक का एक प्रसिद्ध निबंध 'साहित्यिक इतिहास' याद आता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि

साहित्यिक इतिहास को इतिहास भी होना चाहिए और साहित्य भी। यह तभी संभव है, जब इतिहास में उचित आलोचनात्मक विश्लेषण का समावेश हो, लेकिन इस सावधानी के साथ कि उस पर आलोचना हावी न हो जाए।

बावजूद इन कठिनाइयों के, मेरा मानना है कि पूरे साहित्य का नहीं, तो उसकी अलग-अलग विधाओं का इतिहास प्रत्येक पीढ़ी में लिखा जाना चाहिए। निस्संदेह यह काम गहन शोध, कठिन श्रम और अपार धैर्य का होने के कारण चुनौतीपूर्ण तो है, किंतु अत्यंत आवश्यक भी है, क्योंकि नया इतिहास-लेखक रचनाकारों में से नए ढंग से चयन करता है, उन्हें नया क्रम प्रदान करता है और अपने नए एवं व्यापक दृष्टिकोण के द्वारा, जो सिर्फ साहित्यिक ही हो सकता है, नए निष्कर्षों पर पहुँचता है, जिससे नए साहित्य को बल प्राप्त होता है।

ऊपर जिन कठिनाइयों और चुनौतियों का उल्लेख किया गया है, उनके आलोक में देखें, तो हिंदी कथा-साहित्य के इतिहास-लेखन के क्षेत्र में डॉ. गोपाल राय के योगदान का महत्त्व हमें पता चलता है। उनके लेखन में हिंदी कथाकाश का एक समूचा नक्षत्र-मंडल अपने रंगों और रोशनियों के साथ उपस्थित है। उनकी इतिहास-दृष्टि हिंदी कथा-जगत् की प्राय: सभी गलियों, राहों और मोड़ों से गुजरती है; सभी जरूरी दरवाजों पर दस्तक देती है, सभी मजबूत दरवाजों को खोलने की कोशिश करती है; किसी जरूरी सवाल से टकराए बिना वह आगे नहीं बढ़ती। हिंदी कथा-साहित्य को पाठक-सहज बनाने में उनकी भूमिका अतुल्य है। 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' एवं तीन खंडों में रचित करीब डेढ़ हजार पृष्ठों के 'हिंदी कहानी का इतिहास' के अलावा उन्होंने इन विधाओं पर विचार करने में जो तत्परता दिखाई है, उनका विश्लेषण और मूल्यांकन करने में जिस अथक सक्रियता का परिचय दिया है, वह विस्मयजनक है। 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव', 'हिंदी उपन्यास कोश (खंड-1)', 'हिंदी उपन्यास कोश (खंड-2)', 'उपन्यास का शिल्प', 'अज्ञेय और उनके उपन्यास', 'उपन्यास की संरचना', 'अज्ञेय और उनका कथा-साहित्य', इनके अतिरिक्त 'उपन्यास की पहचान' शृंखला के अंतर्गत 'शेखर : एक जीवनी', 'गोदान : नया परिप्रेक्ष्य', 'रंगभूमि : पुनर्मूल्यांकन', 'मैला आँचल', 'दिव्या', 'महाभोज'–ये सारी पुस्तकें उनके सृजनकर्म की गहनता की गवाही देती हैं।

यहाँ हम सिर्फ उनके 'इतिहासों' की चर्चा करके अपनी बात समाप्त करना चाहेंगे। 'हिंदी कहानी का इतिहास' में उन्होंने हिंदी कहानी के

हर पहलू पर गौर किया है, उसके उद्भव से लेकर बीसवीं शताब्दी के अंत तक की उसकी विकास-यात्रा पर विस्तार से लिखा है। यह पुस्तक तीन खंडों में विभाजित है। पहला खंड 1900 ई. से 1950 ई. तक की कथा-यात्रा का इतिहास प्रस्तुत करता है, दूसरे खंड में 1951 ई. से 1975 ई. तक की हिंदी कहानी का लेखा-जोखा है और तीसरे खंड में 1976 ई. से 2000 ई. के दौरान विकसित हिंदी कहानी पर विचार किया गया है। तीनों खंड विस्तृत होने के बावजूद सुव्यवस्थित तथा सुविचारित हैं। इनमें लेखक ने हिंदी की सभी उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण तथा मूल्यांकन तो किया ही है, उन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों का भी विवेचन किया है, जिनका प्रभाव अनिवार्य रूप से रचनाशीलता पर पड़ता है। प्रवृत्तियों के विश्लेषण की क्षमता, तार्किकता, तथ्यों की प्रामाणिकता आदि विशेषताएँ पुस्तक के तीनों खंडों को अलग से उल्लेख्य बनाती हैं। पहले खंड की भूमिका में लेखक ने अगर यह दावा किया है कि "यह हिंदी कहानी का पहला व्यवस्थित इतिहास है और हिंदी-उर्दू का पहला समेकित इतिहास तो यह है ही।"[5] तो यह दावा गलत नहीं है। हम जानते हैं कि इस खंड में जिस अवधि के कथा-संसार को लेखक ने अपने 'इतिहास' का विषय बनाया है, उसमें अनेक कहानीकार एक साथ हिंदी और उर्दू दोनों में लिख रहे थे, जिनमें प्रेमचंद प्रमुख हैं। सुदर्शन, उपेंद्रनाथ अश्क आदि भी दोनों भाषाओं में एक साथ लिख रहे थे। इस प्रसंग में गौरतलब है कि इनकी हिंदी और उर्दू में लिपि को छोड़कर कोई खास फर्क नहीं है। कथ्य और संरचना में तो कोई अंतर है ही नहीं। इस खंड में उर्दू-हिंदी और मैथिली-भोजपुरी-राजस्थानी के करीब 100 कहानीकारों और करीब 3000 कहानियों का कमोबेश विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। दूसरे खंड में तो और भी ज्यादा, करीब 300 कहानीकारों और 5000 से अधिक कहानियों का विस्तृत उल्लेख है। तीसरा खंड भी पहले दोनों खंडों की गुरुता और प्रतिष्ठा के अनुरूप समृद्ध है। तीनों खंडों के अंत में लेखक ने 'अनुक्रमणिका' शीर्षक के अंतर्गत चर्चित, उल्लेखनीय तथा श्रेष्ठ कहानियों, कहानी-संग्रहों एवं कहानीकारों की अक्षरानुक्रम-सूचियाँ दी हैं। इन्हें देखकर अगर कोई कहता है कि इससे पूर्व हिंदी के किसी इतिहास-ग्रंथ में इतनी संख्या में कहानियों और कहानीकारों का उल्लेख उपलब्ध नहीं है, तो वह सही कहता है।

इसी प्रकार, 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' डॉ. राय द्वारा लिखित

एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। आज हिंदी उपन्यास की उम्र लगभग 150 वर्ष हो चुकी है। बहुत ही बेमालूम ढंग से 1870 ई. में पं. गौरीदत्त की 'देवरानी जेठानी की कहानी' के रूप में इसका जन्म हुआ, जिसकी ओर लगभग सौ वर्षों तक किसी का ध्यान नहीं गया। डॉ. राय ने ठोस तर्कों के आधार पर 'देवरानी जेठानी की कहानी' को हिंदी का प्रथम उपन्यास सिद्ध किया है और 1870 ई. से 2000 ई. तक की अवधि में हिंदी उपन्यास के ऐतिहासिक विकास को समझने की कोशिश की है। इस पुस्तक में पहली बार लगभग 425 उपन्यासकारों और 1375 उपन्यासों का जिक्र उनके प्रामाणिक प्रकाशन-काल के साथ किया गया है। यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि इस पुस्तक में कोई महत्त्वपूर्ण उपन्यास या उपन्यासकार छूट नहीं गया है, पर इसका प्रयास जरूर किया गया है। साहित्य के इतिहास में सभी लिखित-प्रकाशित रचनाओं का जिक्र न संभव है, न जरूरी, इसलिए सचेत रूप से भी इस पुस्तक में अनेक उपन्यासों का जिक्र नहीं किया गया है। आधुनिक हिंदी की एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में हिंदी उपन्यास का विकास अभी जारी है। विकास 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' में ही होता है, अत: इस पुस्तक में लेखक की कोशिश रही है कि यह पुस्तक हिंदी उपन्यास का मात्र 'इतिहास' न बनकर उसका 'विकासात्मक इतिहास' बने।

डॉ. राय लिखित कथालोचना और साहित्येतिहास की पुस्तकों की एक बड़ी विशेषता यह है कि उनमें उन्होंने स्वयंप्राप्त निष्कर्षों को ही रखा है। उन्होंने जिन रचनाओं और रचनाकारों पर लिखा है, उन्हें स्वयं पढ़कर, उनमें अभिव्यक्त अनुभूतियों से स्वयं गुजरकर, उनसे संबद्ध तथ्यों और संदर्भों को गहरे श्रम और शोध के द्वारा खोज-बीनकर, उनकी सत्यता को ठोंक-बजाकर उनके बारे में पक्की राय बनाई है, फिर लिखा है। तथ्यों को लेकर उनकी सजगता और सावधानता आज के आलसी और अधीर-दोनों प्रकार के गैर-जिम्मेदार आलोचकों के लिए एक सबक है। उनकी पुस्तकों में 'सेकेंडहैंड इन्फॉर्मेशन' आपको नहीं मिलेगा, क्योंकि उस पर उनका जरा भी भरोसा नहीं है। आज हिंदी में ऐसे आलोचक भी हैं, जो बिना पुस्तक को पढ़े, सिर्फ व्यक्ति को देखकर और अपने हित-अहित को ध्यान में रखकर प्रशंसा और निंदा से युक्त समीक्षाएँ लिखते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कभी ऐसे ही 'रहस्यवादी' आलोचकों या समीक्षकों पर व्यंग्य करते हुए लिखा था—"आसमान में निरंतर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं है और मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हँसी-खेल नहीं है।

पुस्तक को छुआ तक नहीं, और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकंपित! यह क्या कम साधना है?... पढ़नेवाला आलोचना नहीं करता, आलोचना करनेवाला पढ़ता नहीं– यही तो उचित नाता है। एक ही आदमी पढ़े भी और लिखे भी, या पढ़े भी और आलोचना भी करे या लिखे भी इत्यादि-इत्यादि, तो साहित्य में अराजकता फैल जाए।"[14] साफ है कि ऐसे आलोचकों का ध्यान अपने आलोचनात्मक विवेक को विकसित करने की ओर कतई नहीं रहता। आज की आलोचना की एक बड़ी समस्या है उसमें श्रम और अध्यवसाय की घोर कमी। तुरंत और चलंत ढंग की समीक्षा का बाजार गर्म है। प्राय: आलोचक अपने व्यापक दायित्व और बृहत्तर उद्देश्य से भटक गए हैं। पूँजीवादी दबाव और बाजार के हमले से उनकी आत्मा भी बची नहीं रही। आज आलोचना का एक बड़ा हिस्सा पुस्तक-समीक्षा है, जिसका अस्तित्व बाजार की 'माँग' और 'उत्पादन' की संरचना पर टिका है, यानी अब वह अंत:प्रेरणा के आधार पर आलोचकीय दायित्व के साथ नहीं लिखी जाती। फलत: या तो वह विज्ञापन बनकर रह गई है या आपस की 'मैच-फिक्सिंग'। इसी कारण समकालीन आलोचना में अपने समय की रचना को जाँचने–परखने और उससे टकराने के बदले उसे उछाल देने या उससे बचकर निकल जाने के दृश्य ज्यादा दिखाई देते हैं।

यह भी चिंतनीय है कि कथित कलावाद और जनवाद ने आलोचना के क्षेत्र में खेमेबाजी या गुटबंदी का रूप ले लिया है। साहित्य-हित में यह भी कतई स्वीकार्य नहीं है। कथित कलावादी किसी बड़े-से-बड़े जनवादी रचनाकार की ओर भी आँख उठाकर नहीं देखते और कथित जनवादी भी कलावादियों के साथ ऐसा ही बरताव करते हैं। अगर रचनाकार अपने पक्ष का हुआ, तो वे आँख मूँदकर उसकी महिमा का गान करते हैं। जाहिर है, इस प्रवृत्ति के कारण वे हीन साहित्य तक को महान् साहित्य सिद्ध करने से जरा नहीं हिचकते। जनवादी लोग साहित्य के मर्म को अवहेलित करते हुए अपनी विचारधारा को सबसे ऊपर मानते हैं, फलत: वे साहित्य के साथ न्याय नहीं कर पाते। वे अपना पैराशूट लेकर साहित्याकाश में तो तैरते ही हैं, साहित्य-सरिता में तैरने के लिए भी उसी को लेकर उतर जाते हैं! खेमेबाजी के कारण ठोस मूल्यांकन की प्रवृत्ति हवा होती जा रही है और हवाई बातों को महत्त्व दिया जा रहा है। आचार्य द्विवेदी पुन: याद आ रहे हैं, जिन्होंने ठीक समझाया था कि–"हमारी साहित्यिक आलोचना में हवाई बातों को छोड़कर ठोस रचनाओं को लेकर चर्चा चले तो अच्छा हो, व्यर्थ ही

दलबंदियों और आरोप-प्रत्यारोपों के वाग्जाल में कोई सार नहीं है।"[7] जाहिर है, डॉ. गोपाल राय की आलोचना आचार्य द्विवेदी की इस जरूरी सलाह के समर्थन में है। एक तरफ वह स्वयं को व्यावसायिक दबावों और पूँजीवादी प्रलोभनों से बचाए रही है, तो दूसरी तरफ गहरे नैतिक दायित्व, कठिन श्रम, व्यापक अध्यवसाय और खुली हुई दृष्टि के साथ सृजन तथा सृजन के प्रश्नों और संकटों से टकराती रही है। वह सच कहने से नहीं डरती। कई बार खुद को गलत समझ लिए जाने का खतरा मोल लेकर भी वह अपना अनुभव और विचार सामने रखती है।

कहना न होगा कि आज के यश-लोलुप और पुरस्कार-कामी समय में, जबकि अधिकतर लेखक, कथालोचक विजयमोहन सिंह के अनुसार, "अनवरत ऐसे 'नारदीय भ्रम' में पड़े रहते हैं कि हमेशा वरमाला उनके ही गले में पड़ेगी"[8], जबकि चार पन्ने लिखनेवाले लेखक भी गले में चौदह तमगे लटकाकर घूमना चाहते हैं और जबकि 'अधजल गगरियाँ' ज्यादा छलकती हैं, डॉ. गोपाल राय की सृजन-साधना हमारे लिए एक मिसाल है, जो मशाल बनकर हमें राह और रोशनी दिखाती है। निस्संदेह हिंदी कथा-साहित्य के ओर-छोर और प्रसार को जानने-समझने के लिए उनका लेखन हमारे लिए एक बड़ा संबल है, जिससे गुजरकर ही हम 'काव्य' और 'काव्यालोचना' के नाद से आच्छादित हिंदी जगत् में 'कथा' के मर्म तक पहुँच सकते हैं।

संदर्भ-सूची :

1. हिंदी कहानी का इतिहास–गोपाल राय; पृ. सं. 7
2. वही
3. क्रमभंग–नंदकिशोर नवल; पृ. सं. 25
4. वही
5. हिंदी कहानी का इतिहास–गोपाल राय; पृ. सं. 9–10
6. अशोक के फूल–हजारीप्रसाद द्विवेदी; पृ. सं. 50
7. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-7–सं. मुकुंद द्विवेदी; पृ. सं. 179
8. नया ज्ञानोदय–सं. रवींद्र कालिया; अंक–सितंबर, 2007; पृ. सं. 119

सहायक प्राध्यापक,

विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,

बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।